उपेक्षित मानसिक स्वास्थ्य

स्वास्थ्य के मोर्चे पर बीते दो दशकों में अनेक उल्लेखनीय उपलब्धियां हासिल हुई हैं, लेकिन नीति और निवेश के स्तर पर समुचित ध्यान नहीं देने के कारण कई गंभीर चुनौतियां देश के सामने हैं. इनमें से एक मानसिक स्वास्थ्य की उपेक्षा भी है. विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक, अगले साल तक भारत की 20 फीसदी आबादी किसी मानसिक बीमारी से ग्रस्त होगी. हमारे देश में करीब आठ लाख लोग हर साल आत्महत्या कर लेते हैं और 15 से 29 साल आयु वर्ग में आत्महत्या मौत की दूसरी सबसे बड़ी वजह है. अवसाद, चिंता, नशे की लत के कारण पैदा होनेवाली परेशानियां और अन्य मानसिक अस्थिरताओं के संकट का सामना करने के लिए 2014 में राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य नीति लायी गयी और 2017 में मानसिक स्वास्थ्य सेवा कानून भी पारित किया गया. साल 2018 में बीमा प्राधिकरण ने इस कानून के प्रावधानों के अनुरूप सहायता देने का निर्देश बीमा कंपनियों को दिया था. निश्चित रूप से इन पहलों का एक सकारात्मक असर पड़ा है और भविष्य के लिए उम्मीदें मजबूत हुई हैं. लेकिन त्वरा के साथ मानसिक रोगियों और विभिन्न परेशानियों से जूझ रहे लोगों तक मदद पहुंचाने में हम बहुत पीछे हैं. सरकारी आंकड़ों के मुताबिक, लगभग 90 फीसदी रोगियों को इलाज मयस्सर नहीं है. करोड़ों रोगियों के लिए मात्र 3,800 मनोचिकित्सक और 898 चिकित्सकीय मनोवैज्ञानिक हैं. केंद्रीय स्वास्थ्य बजट का सिर्फ 0.16 फीसदी हिस्सा ही इस मद के लिए आवंटित है. एक तो सरकारी स्तर पर समुचित प्रयासों का अभाव है, दूसरी तरफ मानसिक समस्याओं से जूझ रहे लोगों के प्रति समाज का रवैया भी बेहद चिंताजनक है. इन समस्याओं को समाज का बड़ा हिस्सा अपमान, शर्मिंदगी और हिकारत की नजर से देखता है. ऐसे में समस्या से जूझता व्यक्ति और उसका परिवार भी चुप्पी साध लेता है तथा उसे आस-पड़ोस का साथ भी नहीं मिल पाता है. इस तरह से व्यक्ति का स्वास्थ्य और जीवन भी प्रभावित होता है तथा वह सामाजिक और आर्थिक रूप से भी योगदान देने में शिथिल हो जाता है. वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम और हार्वर्ड के एक अध्ययन के मुताबिक, 2012 से 2030 के बीच मानसिक बीमारी का वित्तीय भार 1.03 ट्रिलियन डॉलर हो जायेगा, जो कि आर्थिक उत्पादन का 22 फीसदी हिस्सा है. एक आकलन यह भी है कि 2025 तक स्वस्थ जीवन के 3.81 करोड़ साल मानसिक बीमारी के कारण बर्बाद हो जायेंगे. ये तथ्य इंगित करते हैं कि अगर समय रहते इस मसले पर ध्यान नहीं दिया गया, तो स्थिति लगातार बिगड़ती जायेगी. हमारे पास एक ठोस कानून है, जो मानसिक समस्याओं से परेशान लोगों को अधिकारों से संपन्न करता है. अब सवाल यह है कि शासन-प्रशासन के स्तर पर कानूनी प्रावधानों को कितनी गंभीरता से अमली जामा पहनाया जाता है तथा समाज अपनी नकारात्मक सोच और व्यवहार में कितनी जल्दी बदलाव लाता है.

वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम और हार्वर्ड के एक अध्ययन के मुताबिक, 2012 से 2030 के बीच मानसिक बीमारी का वित्तीय भार 1.03 ट्रिलियन डॉलर हो जायेगा.

ऐसे आ सकते हैं कांग्रेस के अच्छे दिन

सुरेंद्र किशोर
वरिष्ठ पत्रकार
surendarkishore@gmail.com

जीवनभर कांग्रेस के विरोधी रहे समाजवादी नेता मधु लिमये ने अपने आखिरी दिनों में कहा था कि 'सुधरी हुई कांग्रेस ही विविधताओं से भरे इस देश को बेहतर ढंग से चला सकती है.' गैर-कांग्रेसी दलों की खिचड़ी सरकारों के कामों को नजदीक से देखने के बाद लिमये इस नतीजे पर पहुंचे थे. उनका मानना था कि 'मध्यमार्गी पार्टी कांग्रेस के कार्यकर्ता देशभर में हैं. वह सभी समुदायों को भरसक अपने साथ बांधकर रख सकती है. यह गुण न तो क्षेत्रीय दलों में है और न ही भाजपा में.' मधु लिमये का यह सपना पूरा नहीं हुआ, तो इसके लिए कांग्रेस ही जिम्मेदार है.

अब देश को चलाने की बात कौन कहे, कांग्रेस पार्टी में प्रतिपक्ष को चलाने की भी क्षमता नहीं बची. प्रतिपक्षी दल इससे दूर भाग रहे हैं. उधर इस बीच भाजपा ने राष्ट्रीय स्तर पर 'सबका साथ सबका विकास' करने की कोशिश की है. देश और स्वस्थ लोकतंत्र के लिए यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि भाजपा के मुकाबले स्वस्थ व मजबूत प्रतिपक्ष नहीं है. वैसे अधिकतर क्षेत्रीय दल घोर जातिवाद, वंशवाद और पैसावाद के आरोपों से सने हैं. कुछ अपवादों को छोड़ दें, तो क्षेत्रीय दल भी कांग्रेस को अपने साथ लेने को तैयार नहीं हैं. ऐसा इसलिए हो रहा है, क्योंकि उन्हें कांग्रेस एक कमजोर पार्टी नजर आ रही है. उन्हें कांग्रेस मददगार के बदले बोझ लग रही है. यहां तक कि जिन उत्तर प्रदेश और बिहार में कांग्रेस कभी काफी ताकतवर थी, वहां भी क्षेत्रीय दलों के सामने वह निरीह बन चुकी है. इसके लिए खुद कांग्रेस ही अधिक जिम्मेदार रही है. इसलिए फिर से ताकतवर बनने के लिए उसे ही खुद को बदलना होगा. पर क्या बदलने की ताकत भी कांग्रेस में अब बची हुई है? कई बार अपनी ताकत न भी हो, तो सत्ताधारी दल की विफलताओं का लाभ प्रतिपक्ष को मिल जाता है. लेकिन, उस लाभ को बनाये रखने के लिए तो खुद उसे ही प्रयास करना पड़ता है.

साल 2014 में केंद्र में राजग के सत्ता में आने के लिए खुद राजग या नरेंद्र मोदी को 40 प्रतिशत ही श्रेय जाता है. बाकी 60 प्रतिशत लाभ तो उन्हें मनमोहन सरकार की विफलताओं के कारण मिला. यहां तक कि हाल में मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान विधानसभा चुनावों में कांग्रेस को मिली सफलता के पीछे भी भाजपा सरकारों की विफलताएं ही अधिक थीं. इस पृष्ठभूमि में मौजूदा लोकसभा चुनाव के बाद शायद कांग्रेस नेतृत्व को आत्मनिरीक्षण करने का अवसर मिल सकता है, यदि वह चाहे. देश में स्वस्थ लोकतंत्र के विकास के लिए उसे ऐसा करना ही चाहिए. बेहतर होता कि एक खास परिवार के बदले कुछ समझदार, राष्ट्रहित चिंतक व ईमानदार कांग्रेसियों की वर्किंग कमेटी, पार्टी को निर्देशित करती.

इस बीच कांग्रेस के लिए यह जान लेना जरूरी है कि 1984 के बाद से ही कांग्रेस लगातार निरीह क्यों होती चली गयी. हालांकि, उसका बीजारोपण पहले ही हो चुका था. यदि कांग्रेस ने सबका साथ लेकर सबके विकास की चिंता आजादी के बाद से ही की होती, तो आज उसे यह दिन नहीं देखना पड़ता.

आज के अधिकतर जाति आधारित क्षेत्रीय दल इस बहाने खड़े हुए और ताकतवर बने, क्योंकि कांग्रेस ने उनकी जातियों के साथ न्याय नहीं किया. न्याय का सबसे बड़ा आधार आरक्षण हो सकता था. भारतीय संविधान के अनुच्छेद-340 में सामाजिक न्याय का प्रावधान भी किया गया. पर, कांग्रेस ने लगातार उसका विरोध किया. साल 1990 में जब वीपी सिंह सरकार ने मंडल आरक्षण लागू किया, तो कांग्रेस ने कई बहाने से उसका विरोध किया. यानी समर्थन नहीं किया. राममंदिर पर भी कांग्रेस की ढुलमुल नीति के चलते कांग्रेस का जन समर्थन काफी घट गया. उसके बाद कभी उसे लोक सभा में बहुमत नहीं मिल सका.

आजादी के बाद उत्तर प्रदेश और बिहार में जब-जब कांग्रेस को विधानसभाओं में पूर्ण बहुमत मिला, उसने सिर्फ सवर्णों को ही मुख्यमंत्री बनाया. जबकि, ये राज्य पिछड़ा बहुल हैं. कांग्रेस के पास पिछड़ों में शालीन नेता भी थे, लेकिन जब पिछड़े राज्यों में राजनीति की बागडोर गैर-कांग्रेसी ताकतों के हाथों में चली गयी, तो कांग्रेस ने पिछड़ों के बीच से ऐसे नेताओं को उभारा, जो 'पिछड़ों के साथ हुए अन्याय का सूद सहित बदला' ले सकें. अब स्थिति यह है कि कांग्रेस के पास उत्तर प्रदेश में मात्र 6.2 प्रतिशत और बिहार में मात्र 6.7 प्रतिशत वोट ही बच गये हैं. इसके बावजूद मनमोहन सरकार ने दस साल तक कुछ ऐसे विवादास्पद काम किये, जिनसे भाजपा व खासकर नरेंद्र मोदी को राजनीतिक लाभ मिला. हालांकि मनमोहन के कुछ काम अच्छे भी थे.

साल 2014 के लोकसभा चुनाव में हार के बाद गठित एके एंटोनी कमेटी ने अपनी रपट में कहा था कि 'कांग्रेस की धर्मनिरपेक्षता पर से लोगों का विश्वास उठ रहा है और वे मानते हैं कि कांग्रेस अल्पसंख्यकों के तुष्टिकरण में लगी हुई है.' एंटोनी की रपट के अलावा कांग्रेस के कमजोर होने में उसके घोटालों की खबरों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी. इन दो तत्वों के संबंध में अपनी राह बदलकर कांग्रेस अब भी भाजपा को कमजोर कर सकती है. पर फिलहाल इसके संकेत नहीं हैं. इस लोकसभा चुनाव के बाद शायद कांग्रेस इन मुद्दों पर चिंतन करे.

पिछले दिनों भारत-पाक द्वंद्व और बालाकोट प्रकरण के बाद कई प्रमुख कांग्रेसी नेताओं के जो बयान आये, उनसे तो यही लगता है कि कांग्रेस अपनी पिछली गलतियों से कोई सबक लेने को तैयार नहीं है. उत्तर प्रदेश में तो सपा-बसपा ने कांग्रेस को पूरी तरह अलग-थलग कर ही दिया, पर बिहार में राजद ने कुछ सीटें जरूर कांग्रेस के लिए छोड़ी हैं. कांग्रेस ने 1999 में राष्ट्रपति शासन का राज्यसभा में विरोध करके भंग राबड़ी सरकार को वापस करवा दिया था. साथ ही साल 2000 के विधानसभा चुनाव में जब राजद को बहुमत नहीं मिला, तो कांग्रेस ने राजद से मिलकर सरकार बना ली. इससे कांग्रेस की एक ऐसी पार्टी की छवि बन गयी, जो राजद की छवि से बहुत अलग नहीं थी. उसका भारी नुकसान कांग्रेस को हुआ.

कांग्रेस यह कहती रही कि 'सांप्रदायिक तत्वों को सत्ता में आने से रोकने के लिए' हम लालू-राबड़ी सरकार को बाहर-भीतर से समर्थन देते हैं. पर, इस विधि से कांग्रेस न तो भाजपा को सत्ता में आने से रोक सकी और न ही अपनी खुद की राजनीतिक ताकत बनाये रख सकी. इन सबके बावजूद अब भी यदि कांग्रेस का राष्ट्रीय नेतृत्व घोटालों के प्रति खुद में नफरत पैदा करे और स्वस्थ व संतुलित धर्मनिरपेक्षता की राह पर चले, तो एक बार फिर कांग्रेस के अच्छे दिन आ ही सकते हैं.

यदि कांग्रेस का राष्ट्रीय नेतृत्व घोटालों के प्रति खुद में नफरत पैदा करे और स्वस्थ व संतुलित धर्मनिरपेक्षता की राह पर चले, तो एक बार फिर कांग्रेस के अच्छे दिन आ ही सकते हैं.

बोधि वृक्ष

अंतर्ज्ञान आवश्यक

आजकल कॉलेज परिसरों में हिंसा आम बात हो गयी है. यह बड़े दुर्भाग्य की बात है. यदि वहां हिंसा है, तो वहां मूलरूप में कुछ गलत है. जब मैं बड़ा हुआ उस समय अहिंसा और समभाव को बहुत गर्व से देखा जाता था. स्कूल और कॉलेजों में शांति, खुशी, उत्सव और आनंद लाना होगा. अगर हम स्वयं दुख में हैं, तो यह संभव नहीं होगा. पहले हमें अपने दुख की ओर ध्यान देना होगा. यदि आप खुश नहीं हो, तो आप दूसरों को खुश करने के लिए कुछ नहीं कर सकते. तो आप कैसे खुश हो सकते हो? खुश रहने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है. दुखी होने के लिए एक तरीका है. यदि आप हर समय केवल अपने बारे में सोचते रहोगे कि मेरा क्या होगा, तो आप उदास हो जाओगे. हमें अपने आप को किसी सेवा परियोजना में व्यस्त रखने और अध्यात्मिक अभ्यास की आवश्यकता है, जिससे नकारात्मक भाव खत्म होते हैं. इससे हमारा अस्तित्व शुद्ध होता है, भाव में खुशी आती है और सहज ज्ञान प्राप्त होता है. अंतर्ज्ञान आवश्यक है. यदि आप कोई व्यापारी हो, तो किस शेयर में पैसे लगायें जायें, आपको यह जानने के लिए अंतर्ज्ञान की आवश्यकता होगी. यदि आप कोई कवि हो या साहित्य से संबंध रखते हो, तो भी आपको अंतर्ज्ञान की जरूरत होगी. यदि आप डॉक्टर हो, तो आप को अंतर्ज्ञान की जरूरत होगी. डॉक्टर दवाई का सुझाव केवल अवलोकन के आधार पर ही नहीं देते. उसमें किसी और कारण का योगदान भी होता है- अंतर्ज्ञान. अंतर्ज्ञान तब आ सकता है, जब हम अपने भीतर जाते हैं. हम प्रार्थना करते हैं, परंतु उसके स्रोत से संपर्क में नहीं होते. फिर हम हैरान होते हैं कि हमारी प्रार्थना सुनी क्यों नहीं जा रही. क्योंकि हम में आध्यात्मिकता और मानवीय मूल्य नहीं होते. इस तरह से बहुत से लोग नास्तिक बन जाते हैं. उनके जीवन में एक घटना होती है, उनकी प्रार्थना सफल नहीं होती और वे भ्रम में आ जाते हैं. हम में से हर एक में विशाल क्षमता है. आपके विचार बहुत शक्तिशाली हैं. आप जो चाहें बना सकते हो.

श्रीश्री रविशंकर

जवाबदेही और जिम्मेदारी

ज्यां द्रेज
विसिटिंग प्रोफेसर,
अर्थशास्त्र विभाग, रांची विवि
jaandaraz@riseup.net

सरकारी व्यवस्था में जवाबदेही की कमी के कारण आम नागरिकों को बहुत समस्या झेलनी पड़ती है. कभी रिश्वत देनी पड़ती है, कभी सरकारी ऑफिस का चक्कर काटना पड़ता है, कभी सार्वजनिक सुविधा छोड़कर निजी अस्पताल या निजी स्कूल में बजट से ज्यादा खर्च करना पड़ता है. स्कूल के बच्चे, नरेगा मजदूर, मरीज, पेंशन से वंचित विधवा- सभी चाहते हैं कि सरकारी कर्मचारी अपनी ड्यूटी करें, नहीं तो उनके खिलाफ कार्रवाई हो.

पिछले कुछ वर्षों में सरकारी व्यवस्था में जवाबदेही लाने की जरूरत के बारे में काफी चर्चा हुई और इस दिशा में कई कदम भी उठाये गये. मसलन, आरटीआई से हर नागरिक को सरकार से सूचना लेने का अधिकार मिला. कई राज्यों में शिकायत निवारण की सुविधाएं उपलब्ध की गयीं. कुछ राज्यों में शिकायत निवारण के लिए कानून भी बनाये गये. इन कदमों का प्रभाव कितना होगा, यह देखने की बात है, फिर भी इनको जवाबदेही की ओर एक उपयोगी शुरुआत मानी जा सकती है.

जवाबदेही का रास्ता सही है, लेकिन उसकी एक सीमा भी है. जवाबदेही को सरकारी कर्मचारियों के लिए इनाम व सजा की व्यवस्था बनाने का एक प्रयास समझा जा सकता है. लेकिन सरकारी कर्मचारी कोई बैल तो नहीं है, जिसकी निगरानी गाजर और डंडा से की जा सकती है. कर्मचारी को कई बार खुद भी कुछ सोचना या करना पड़ता है.

स्कूल के अध्यापक कितने बजे आते-जाते हैं, इसकी निगरानी जरूर की जा सकती है और अनुपस्थिति कम करने के लिए कई तरह के इनाम और सजा हो सकते हैं. लेकिन अध्यापक दिल से पढ़ायें, इसके लिए क्या निगरानी हो सकती है? कुछ अर्थशास्त्रियों का जवाब है कि अगर अध्यापक का वेतन छात्रों के परीक्षा के अंकों से जोड़ेंगे, तो अध्यापक ध्यान से पढ़ायेंगे. लेकिन शिक्षा केवल कोचिंग की बात नहीं है. शिक्षा बच्चों के संपूर्ण विकास और सेहत की बात है. अध्यापक अगर केवल परीक्षा के अंकों पर ध्यान देंगे तो इससे शिक्षा नहीं होगी.

इसी तरह यदि नर्स का काम देखें, तो उसकी उपस्थिति और रजिस्टर रखरखाव की निगरानी की जा सकती है, लेकिन मरीज से वह कैसे बात करती है, कहां सुई लगाती है और दवा कैसे पिलाती है, इन चीजों की देख-रेख करना मुश्किल है. नर्स से हम उम्मीद करते हैं कि वह अपना काम अपने आप ध्यान से करें. दूसरे शब्दों में, हम नर्स से केवल जवाबदेही नहीं, बल्कि जिम्मेदारी की अपेक्षा भी करते हैं.

शायद आपको लगेगा कि सरकारी कर्मचारियों से जिम्मेदारी की उम्मीद रखना भोलापन की बात है. फिर भी, याद रखिये- दुनिया के श्रेष्ठ अस्पताल, विश्वविद्यालय, पुस्तकालय, संग्रहालय इत्यादि ऐसे लोगों के द्वारा प्रबंधित हैं, जो अपना काम दिल से और जनता के हित में करते हैं. इंग्लैंड या क्यूबा की राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा, इबोला वायरस का नियंत्रण, ज्ञान-विज्ञान का विकास, फंसे खनिकों का बचाव, इन सारे कामों में जिम्मेदारी की भावना का प्रभाव दिखता है.

भारत में भी जिम्मेदारी का व्यवहार इधर-उधर दिखता रहता है. केरल की नर्स पूरे देश में सेवा करती हुई दिखती है. इसका कारण यह नहीं है कि केरल की नर्स के ऊपर जवाबदेही का खास प्रावधान लगाया गया है. खास बात यह है कि केरल की नर्सों के बीच में जिम्मेदारी की कार्य संस्कृति बन गयी है. पिछले साल जब केरल बाढ़ से पीड़ित हुआ था, तब न केवल नर्सें, बल्कि उनके साथ हर सरकारी कर्मचारी और आम नागरिक भी राहत अभियान में दिन-रात शामिल हुए थे.

बिहार और झारखंड जैसे राज्यों की सार्वजनिक संस्थाओं में इस तरह की कार्य संस्कृति बनाने में समय लगेगा. मुझे पिछली दिवाली की याद आती है. उस दिन मैं भोर में रांची विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग जा रहा था. अचानक कुलपति मिले, जबकि आस-पास और कोई नहीं था. कुलपति साहब इधर-उधर विश्वविद्यालय के पेड़-पौधों के स्वास्थ्य की देख-रेख कर रहे थे. बढ़ता हुआ पौधा और खिलते हुए फूलों को देखते हुए खुशी से मुस्कुराते थे. रांची विवि के अर्थशास्त्र विभाग की सबसे कम कमानेवाली कर्मचारी भी अपना काम दिल से करती हैं. वे रोज समय पर आती हैं और दिनभर मेहनत करती हैं. जब मेरे ऑफिस की सफाई करती हैं, तो पूरी ताकत लगाती हैं, मानो उन्हीं के घर में मेहमान आनेवाले हों. उन्हें देख मैं भी मकड़ी के जाले निकालता हूं और हम दोनों मिलकर अच्छी तरह किये काम का आनंद लेते हैं.

मुझे विश्वास है कि हर विवि के हर विभाग में ऐसे लोग होंगे, जो अच्छा काम करते हैं. उनसे उम्मीद है कि आज नहीं तो कल शिक्षा व्यवस्था में जवाबदेही के साथ जिम्मेदारी की कार्य संस्कृति आयेगी.

जिस तरह एक बैलगाड़ी में दो बैल बराबर होते हैं, वैसे ही सार्वजनिक संस्थाओं को ठीक से चलाने के लिए जवाबदेही और जिम्मेदारी दोनों की जरूरत है. कुछ हद तक दोनों का चारा एक ही होता है. उदाहरण के लिए, पारदर्शिता दोनों की मदद करती है. लेकिन, कभी कभी जिम्मेदारी का अपना चारा होता है. विश्वविद्यालय में पेड़-पौधे लगाने से जवाबदेही नहीं बढ़ती, लेकिन पर्यावरण की सुंदरता शायद कुछ लोगों को अपना काम दिल से करने में मदद करती है. उसी तरह सहयोग, बराबरी, दोस्ती, मस्ती का माहौल बनाने से जिम्मेदारी की संस्कृति का लालन-पालन हो सकता है. केवल जवाबदेही पर ध्यान देने से ही बैलगाड़ी बहुत दूर तक नहीं पहुंचेगी.

विश्वविद्यालय में पेड़-पौधे लगाने से जवाबदेही नहीं बढ़ती, लेकिन पर्यावरण की सुंदरता शायद कुछ लोगों को अपना काम दिल से करने में मदद करती है. उसी तरह सहयोग, बराबरी, दोस्ती, मस्ती का माहौल बनाने से जिम्मेदारी की संस्कृति का लालन-पालन हो सकता है.

आपके पत्र

प्रत्याशी चयन का भी मापदंड हो

लोकतंत्र में चुनाव सबसे बड़ा प्रकल्प है और इसमें प्रत्याशी का मापदंड भी आम जनता को तय करना चाहिए. प्रत्याशी ऐसा हो कि राजनीति को वृत्ति न मान कर जनसेवा का माध्यम माने. वह नीति निर्माण और निर्णय लेने में परिपक्वता दिखाए. परियोजनाओं को पूर्ण करवाने में दक्ष हो और जनता के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित करा सके. जनता को यह जरूर देखना चाहिए कि चुनाव का प्रत्याशी विचारहीन तो नहीं. विचार, व्यवहार और नीति के आधार पर प्रत्याशियों का चयन होना चाहिए, जिससे सही मायने में लोकतंत्र की नींव मजबूत होगी. ऐसे प्रत्याशियों का बहिष्कार होना चाहिए, जिन्होंने बिना किसी कारोबार के ही अपने पुराने कार्यकाल में अप्रत्याशित धन अर्जित किये हों. इससे उनका भ्रष्टाचारी कार्यकलाप प्रमाणित होता है. राष्ट्रीय या स्थानीय मुद्दों में नीतिगत फैसले लेने के काबिल हो हमारा प्रत्याशी. राजनीतिक दलों को भी प्रत्याशी चयन में इन बातों का जरूर ख्याल रखनी चाहिए, ताकि जनता को सही परियोजनाओं का उचित लाभ मिल सके और राष्ट्र उन्नति के पथ पर और तेजी से बढ़े. प्रत्याशियों में भारत की क्षेत्रीय, सांस्कृतिक, भाषाई व वैचारिक विविधता के प्रति सम्मान और स्वीकार्यता का भाव भी अपेक्षित है.

डॉ मनोज आजिज, आदित्यपुर-2, जमशेदपुर.

रांची विश्वविद्यालय ध्यान दे

मैं रांची विश्वविद्यालय के अंतर्गत आने वाले एक कॉलेज में बीए के सत्र 2017-2020 का छात्र हूं. स्नातक के प्रथम सेमेस्टर की परीक्षा मार्च, 2018 में ली गयी थी, जिसका मार्कशीट हमें अभी तक नहीं मिला हैं, जबकि द्वितीय सेमेस्टर की परीक्षा सितंबर-अक्तूबर, 2018 में संपन्न हो चुकी है, वह भी सेमेस्टर-1 के एडमिट-कार्ड के फोटो कॉपी के जरिये. हमें आज तक दूसरे सेमेस्टर का एडमिट कार्ड नहीं दिया गया है. सेमेस्टर-दो का रिजल्ट भी अब तक नहीं मिला है. तकरीबन दो साल बीत गये हैं और अब तक विश्वविद्यालय द्वारा सेमेस्टर-3 की परीक्षा की कोई जानकारी प्रदान नहीं की गयी है. लिहाजा, हजारों विद्यार्थियों का भविष्य दांव पर लगा है और विश्वविद्यालय इस पर चुप्पी साधे हुए है.

आशीष गुप्ता, रांची

जागरूक जनता होने का फर्ज निभाएं

लोकतंत्र के महापर्व चुनाव का आगाज हो चुका है. राजनीतिक पार्टियां अपने पंचवर्षीय कोर्स वाली परीक्षा का निर्णायक इम्तहान देने को तैयार हैं. अब जरूरत है कि जनता रूपी परीक्षक जागरूक हो. हम जनता का पुनीत कर्तव्य है कि अपने अव्वल परीक्षार्थी के चयन में पारदर्शिता बरतते हुए, संकीर्ण मानसिकता को दरकिनार करते हुए, उच्च लोकतांत्रिक मानदंडों को अपनाते हुए, राष्ट्र-हित को स्व-हित से ऊपर रखते हुए अपने मताधिकार का प्रयोग कर देश की सत्ता योग्य हाथों में सौंप कर लोकतांत्रिक महापर्व में पुण्य के भागी बनें. जाति-धर्म, निजी स्वार्थ और हर तरह के दबाव से ऊपर उठ कर मतदान करें और राष्ट्र निर्माण की पहली ईंट रखने में महती भूमिका निभाएं.

देवेश कुमार 'देव', इसरी बाजार, गिरिडीह.

कुछ अलग

पीछे रह गये पुरुष

क्षमा शर्मा
वरिष्ठ पत्रकार
kshamasharma1@gmail.com

वर्षों तक गैस सिलिंडर देने के लिए एक लड़का आता था. वह दो विषयों में एमए था. दलित था, उसकी कहीं नौकरी नहीं थी. हाल ही में दिल्ली से सटे ग्रेटर नोएडा की तस्वीर छपी थी, जहां सैकड़ों लड़के दिहाड़ी मजदूरी के लिए खड़े थे. वे उच्च शिक्षित थे, मगर कहीं नौकरी न मिल पाने के कारण मजदूरी करना चाहते थे. नगर-नगर कस्बे-कस्बे यही हालत है. बेरोजगारी, बीमारी तथा अन्य विवाद जिसमें पारिवारिक विवाद शामिल हैं, के कारण हर साल चौरानबे हजार पुरुष आत्महत्या करते हैं. लेकिन ये मामूली खबर भी नहीं बनते. पता नहीं क्यों सरकारों, समाज और स्वयंसेवी संस्थाओं ने इनकी समस्याओं से आंखें मूंद ली हैं.

समाज या देश के उत्थान की जब भी बातें होती हैं, सबके भले और विकास की बातें भी होती हैं. यही लोकतंत्र का नियम भी है. लेकिन सरकार की तमाम योजनाओं से पुरुष गायब रहते हैं. मान लिया गया है कि वे सर्वशक्तिमान पैदा होते हैं, जीवनभर वैसे ही रहते हैं. उन्हें किसी भी सहायता की जरूरत नहीं.

पिछले चार दशक से विकास के अवसरों से इन्हें वंचित किया गया है. इन्हें लगातार नकारात्मक रूप से दिखाया जाता रहा है, क्योंकि वे पुरुष हैं. पुरुषों की छवि ऐसी बना दी गयी है, मानो इस देश के सारे पुरुष अपराधी हैं, दुष्कर्मी हैं, महिलाओं को सतानेवाले हैं, या घरेलू हिंसा करनेवाले हैं.

सच तो यह है कि आज भी हमारे देश में पुरुष न केवल अपने बाल-बच्चों, बल्कि अपने माता-पिता की देखभाल करते हैं. पत्नी के घर वालों को भी कई बार संभालते हैं. दुनिया की हर जिम्मेदारी को निभाते हैं. उनसे यह भी उम्मीद की जाती है कि वे महाबली हों और हर तरह की हिंसा से अपने घर की और बाहर की भी औरतों को बचायें. जो पुरुष अपराधी हों, महिलाओं को सतानेवाले हों, उन्हें तो सजा जरूर मिलनी चाहिए. मगर दुनिया का हर पुरुष सिर्फ खलनायक है, यह सोच गलत है.

मीडिया को भी पुरुषों की ऐसी छवि निर्मित करने से बाज आना चाहिए. स्त्रियों को न्याय मिले, यह तो सब चाहते हैं, लेकिन स्त्रियों को न्याय क्या तभी मिलेगा, जब संसार के सब पुरुषों को अपराधी बना दिया जायेगा? यह सोच इंसानियत के खिलाफ है. हमें गरीब, बेसहारा, बेरोजगार, तमाम तरह के अपराधों के शिकार पुरुषों की हालत के बारे में भी उसी मानवीयता से सोचना चाहिए, जैसे कि हम अन्य लोगों के बारे में सोचते हैं. यदि समाज में पुरुषों को पिछड़ने के लिए छोड़ दिया जाये और हर योजना से उन्हें बाहर रखा जाये, तब क्या देश और समाज का भला हो सकता है? पुरुषों की समस्याओं को उठानेभर से किसी को स्त्री विरोधी क्यों कह दिया जाये?

पुरुषों की भी ढेरों समस्याएं हैं, जिन पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए. एक सर्वेक्षण के अनुसार, भारत में प्रतिवर्ष चौरानवे हजार पुरुष आत्महत्या करते हैं. वे बेहद गरीब हैं, पढ़े-लिखे होने के बावजूद बेरोजगार हैं, लेकिन उनकी समस्याओं से निपटने के लिए शायद ही कोई योजनाएं बनती हों.

देश दुनिया से

स्वार्थवश हुवेई पर दबाव बना रहा है अमेरिका

अमेरिकी सरकार ने न्यायिक, वित्तीय और राजनयिक माध्यमों से चीन के हुवेई कंपनी को दबाने और उसे खत्म करने का लगातार प्रयास किया है. इस तरह की कार्रवाइयों ने चीनी लोगों के बीच चिंता पैदा कर दी है. यह अमेरिका की शीत युद्ध की मानसिकता है, जो उसे अत्यधिक स्वार्थी बनाता है और केवल अपने राष्ट्रीय हितों को समझने की अनुमति देता है. हुवेई मामले में अमेरिका एक पारंपरिक गलत धारणा का उपयोग करता है, जो अब नाटकीय रूप ले चुका है. यह शीत युद्ध की मानसिकता ही है, जिस कारण चीन-अमेरिका संबंधों का विश्लेषण करते हुए अमेरिका ने हुवेई को एक रणनीतिक खतरे के रूप में परिभाषित किया है. फिर भी, हुवेई ने दुनिया के शीर्ष 50 ऑपरेटरों में से 45 के साथ साझेदारी की है और दुनिया की 40 प्रतिशत से अधिक आबादी को दूरसंचार उपकरण मुहैया करा रहा है. कोर पेटेंट के मामले में यूरोपीय दूरसंचार मानकीकरण संघ की सूची में हुवेई ने नोकिया और एरिक्सन को पछाड़कर पहला स्थान प्राप्त किया है. हुवेई की इस जीत को अमेरिका ने चीन की ओर से मिलनेवाले रणनीतिक खतरे और खुद के लिए एक चुनौती के रूप में देखा है.

शेन यी

कार्टून कोना

साभार : कार्टूनमूवमेंटडॉटकॉम

पोस्ट करें : प्रभात खबर, 15 पी, इंडस्ट्रियल एरिया, कोकर, रांची 834001, **फैक्स करें** : 0651-2544006,
मेल करें : eletter@prabhatkhabar.in पर ई-मेल संक्षिप्त व हिंदी में हो. लिपि रोमन भी हो सकती है